



दलित कहानियों में अभिव्यक्त समस्या 'हंस' के माध्यम से

ललिता महतो

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

हिन्दू वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत सदियों से जातिगत भेद व उत्पीड़न का शिकार दलित समाज लम्बे समय से हाशिए पर खड़ा था। मुख्यधारा का समाज उन्हें मनुष्य समझता ही नहीं था। उन्होंने अपनी दैनीयता को अपनी नियति मान लिया था। आधुनिक भारत में उनके इस अंधकारपूर्ण जीवन में आशा की किरण जगाने का काम ज्योतिबा फूले ने किया जिसे आगे बढ़ाते हुए डॉ० अम्बेडकर ने उन्हें संवैधानिक अधिकार दिलाने का काम किया। आजाद हिन्दुस्तान में संविधान में बराबरी का दर्जा तो मिला, उनके साथ किये जाने वाले जातिगत भेदभाव व उत्पीड़न को कानूनन अपराध घोषित किया गया। उन्हें संविधान में बराबरी का दर्जा तो मिल गया लेकिन उनके साथ होने वाला जातिगत भेद व्यवहारिक रूप में खत्म नहीं हुआ। आरम्भिक दलित कहानीकारों ने दलितों के साथ होने वाले जातिगत भेदभाव व उत्पीड़न को अपनी कहानियों में प्रमुखता से व्यक्त किया है। ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'बैल की खाल' और शरण कुमार लिंबाले की 'नाग पीछा कर रहे हैं'² कहानियाँ इसी हकीकत को व्यक्त करती हैं।

संवैधानिक अधिकारों के फलस्वरूप मिले आरक्षण ने दलितों के लिए अब तक बंद सरकारी नौकरियों में पहुँच का अवसर दिया। वे सरकार, पंचायत या शिक्षण संस्थानों के छोटे पदों पर पहुँचने लगे लेकिन वहाँ भी उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता न ही उनकी योग्यता पर विश्वास किया जाता है। भरसक उनका उपहास उड़ाकर नीचा दिखाने का प्रयास किया जाता है। दलित व्यक्ति अपनी मेहनत के बल पर कितना भी ऊँचा पद प्राप्त कर ले, एक अदना सा व्यक्ति उनकी जाति बताकर उसे नीचा दिखा सकता है। गैर दलित खासकर सवर्ण समाज की दलितों के प्रति इसी नफरती मानसिकता को रेखांकित करती है 'रात'³ और 'पिघला हुआ सीसा'⁴ जैसी कहानियाँ।

ग्रामीण समाज में तो जातिगत भेदभाव मौजूद है ही शहरी मध्यवर्गीय समाज भी इससे मुक्त नहीं है। बड़े से बड़े पद पर आसीन दलित व्यक्ति के लिए सवर्ण रिहायशों में घर मिलना मुश्किल होता है। इन चुनौतियों के मद्देनजर वे अक्सर अपना सरनेम बदल देते हैं पड़ोसियों से मिलना जुलना बहुत कम रखा जाता है मगर कभी बच्चों या रिश्तेदारों से पहचान प्रकट होने पर स्थिति विकट हो जाती है। इसी सच्चाई को उजागर करती है अजय नावरिया की कहानी 'न्याय कथा'⁵ ऊँचा पद और समृद्धि जाति के सामने बौना साबित होते हैं। संजीव की कहानी 'डेढ़ सौ साल की तनहाई' का नायक तीन-चार पीढ़ियाँ विदेश में बिताकर जब सम्पन्न और पश्चिमी लोकतंत्र

का नायक बनकर बिहार में अपने गाँव पहुँचता है तो पाता है कि 'चमार' नाम का साँप वहाँ फन फैलाए फुंफकार रहा है। जाति भेदभाव और उत्पीड़न समाज में तो व्याप्त है ही, हमारी संवैधानिक संस्थाएँ, पुलिस प्रशासन, न्यायालय, विश्वविद्यालय भी इससे मुक्त नहीं हैं, विलास गुप्ते की कहानी 'कला हंस'⁷ उच्च-शिक्षण संस्थानों के दलित विरोधी चरित्र को उजागर करती है।

दलित अस्मिता राजनैतिक फलक पर अनुपेक्षणीय है। संवैधानिक अधिकार और वोट की क्षमता के चलते उन्हें गम्भीरता से लेना ही पड़ता है। संवैधानिक अधिकारों से मिले अवसर के चलते अब दलित वर्ग में मध्यवर्ग आकार ले रहा है लेकिन उनका मध्यवर्गीय न उतना आग्रहशील (एसर्टिव) है न उग्र। वह लगभग घुसपैटिए की तरह अपनी स्वीकृति की गलियाँ तलाश रहा है। दलितों के मध्यवर्गीकरण को विपिन बिहारी, टेकचंद या अजय नावरिया की कहानियों में देखा जा सकता है, यहाँ न सवर्णों को गालियाँ दी जाती हैं न अपने 'मर जाने' की हाय हाय है बल्कि यहाँ सवर्णों के साथ द्वन्द्व अपने ही भीतर स्तरों पर अधिक है। कहानियों का नायक अपने दलित होने को लेकर बेहद चौकन्ना और संवेदनशील है। वह सवर्णों के हर व्यवहार में अपने लिए दूरी और परायापन सूँघता है। वह हमेशा उसके जैसा बनना चाहता है लेकिन बीच-बीच में ऐसा कुछ भांप लेता है जो दोनों के दंश को फिर जगा देता है। व्यवहार के स्तर पर वहाँ बहुत भेदभाव नहीं है मगर कभी भी ऐसा कुछ हो सकता है जो अपनी 'औकाद' याद दिला दे।

जातिगत भेद व उत्पीड़न को व्यक्त करने से शुरु हुआ दलित कहानी लेखन ख विभिन्न पड़ावों से गुजरता हुआ आज इस मुकाम पर पहुँचा है कि वह अपनी गलतियों व अन्तर्विरोधों पर खुलकर बात करने लगा है। 'एयरगन का घोड़ा'⁸ और 'कार्ड संख्या' कहानियाँ दलित विमर्श के अन्तर्विरोधों को रेखांकित करती हैं।

दलित साहित्य को लेकर गैर दलित लेखकों के बड़े तबके का यह आरोप रहा है कि उसमें कला का अभाव है तथा वे अपनी असंस्कारी भाषा के जरिए साहित्य में अश्लीलता फैला रहे हैं। जब 'हंस' ने दलित लेखन को बड़े पैमाने पर छापना शुरु किया तो उस पर भी साहित्य में साहित्य में प्रदूषण फैलाने का आरोप लगा। लेकिन उन आरोपों की परवाह किये बिना 'हंस' अपने काम को आगे बढ़ाता रहा। दलित साहित्य पर लगने वाले आरोपों के संदर्भ में राजेन्द्र यादव ने लिखा है— "कबीर या दूसरे भक्त कवियों की रचनाओं को हम कलाविहीन या भाषा संस्कार से रहित कहकर बरसों हाशिए पर डाले रहे,

आखिर झूठ मारकर उन्हें अपने सौन्दर्य शास्त्रीय पूर्वाग्रहों को छोड़ और बदलकर स्वीकृति भी देनी पड़ी और संघर्ष चेतना भी कालांतर में उन्हें मजबूर करेगी कि वे अपनी फफूंदयायी साहित्यिक समझ को पुरातात्विक आलमारियों में बंद करके इस नये को इन्हीं की शर्तों पर समझे।⁹ इस तरह 'हंस' दलित लेखन के साथ मजबूती से खड़ा था, वह उसे साहित्य स्वीकृति पाने की बजाय अपने संघर्ष और आन्दोलन को आगे बढ़ाते हुए नया सौन्दर्यशास्त्र रचने को प्रेरित करता है। 'हंस' ने न केवल दलित लेखन को बड़े पैमाने पर प्रकाशित किया अपितु मजबूती के साथ उसका पक्ष रखते हुए समय-समय पर उसे निर्देशित भी किया। दलित लेखन को आगे बढ़ाने में 'हंस' की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता।

संदर्भ सूची

1. 'हंस' (संपा.) राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, दिसम्बर 1992, पृ. 34
2. 'हंस' (संपा.) राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, जनवरी 1994, पृ. 24
3. 'हंस', अगस्त 2004, पृ. 163
4. 'हंस', अगस्त 2004, पृ. 160
5. 'हंस', अगस्त 2011, पृ. 32
6. 'हंस' जनवरी 2003, पृ. 76
7. 'हंस', मार्च 2011, पृ. 25
8. 'हंस', मार्च 2013, पृ. 15
9. 'हंस', नवम्बर 2002, पृ. 8